मूल्य : ५०.०० रुपये

जुलाई २०११

अंक ०४

वर्ष : ३५

तित्थयर

॥ जैन भवन ॥

Courtesy :

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,
कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

कमल सिंह करनावट
अध्यक्ष

विनोद चंद बोथरा
कोषाध्यक्ष

गौतम दूगड़
सचिव

जैन भवन

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट
कोलकाता - ७०० ००७
फोन नं. : २२६८-२६५५, २२७२-९०२८
E-mail : jainbhawan@bsnl.in

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३५ अंक - ४ जुलाई २०११

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - **Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007**
Phone : 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@bsnl.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and Printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा,

॥ जैन भवन ॥

अनुक्रमणिका

क्र. सं. लेख	लेखक	पृ. सं.
१. मुगलकाल में जैन धर्म एवं आचाय परम्परा	नीना जैन	११३
२. जैन ज्योतिष साहित्य	स्व. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री	१२५
३. हरिश्चन्द्र-तारा		१२९

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

मुगलकाल में जैन धर्म एवं आचार्य परम्परा

नीना जैन

जिस प्रकार कस्तूरी की सुगन्ध फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं होती, वह स्वतः ही फैल जाती है। उसी प्रकार सूरिजी के सद् कार्यों द्वारा उनकी कीर्ति भी चारों ओर फैल गई, गाँव-गाँव में कई मंदिरों की प्रतिष्ठायें करवाते हुए और भव्य जीवों को उपदेश देते हुए ज्येष्ठ बदि ग्यारस संवत 1671 (सन् 1714) में खम्बात के पास अकबरपुर में सूरिजी का स्वर्गवास हो गया। अकबरपुर में जहाँ सूरिजी का अग्नि संस्कार हुआ वहाँ उनका स्तूप बनाने के लिये बादशाह ने 10 बीघा जमीन जैन श्रीसंघ को दे दी वहाँ खम्बात के निवासी शाहजगसी के पुत्र सोम जी शाह ने सूरिजी का स्तूप बनवाया।[1]

4. आचार्य श्री विजयदेवसूरिजी–

पौष वदी तेरस संवत 1634 (सन् 1577) को (गुजरात) में माता रूपा और पिता श्रेष्ठि के घर में एक बालक का जन्म हुआ। जब बालक गर्भ में आया तो माता ने स्वप्न में सिंह देखा। समय पूरा होने पर रोहिणी योग, वृष लग्न जैसे उत्तम नक्षत्र में बालक ने जन्म लिया। बालक का नाम वासकुमार रखा गया। यही बालक आगे चलकर आचार्य विजयदेवसूरि के नाम से विख्यात हुआ। वासकुमार ने खम्भात

---

1. सोमजी शाह ने जो स्तूप बनवाया उसमें का अकबरपुर में कुछ भी नहीं है, लेकिन खम्भात के भोंयरावाडे में शांतिनाथ का मंदिर हैं। उसके मूल गभारे में- जहाँ प्रतिमा स्थापित होती है, उस स्थान में–बायें हाथ की तरफ एक पादुका वाला पत्थर हैं, उसके लेख से ज्ञात होता है कि यह वहीं पादुका है जो सोमजी शाह ने विजयसेनसूरिजी के स्तूप पर स्थापित की थी, शायद काल के प्रभाव से अकबरपुर की स्थिति खराब हो जाने पर यह पादुका वाला पत्थर यहाँ लाया गया होगा।

में संवत 1643 (सन् 1586) में आचार्य विजयसेनसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की और विद्याविजय नाम पाया। संवत 1655 (सन् 1598) में विजयसेनसूरि ने इन्हें अपना पट्टधर घोषित किया।

विजयदेवसूरि ने मालवा, राजपूताना, मेवाड़, दक्षिण, पूर्व देश, पंजाब, काश्मीर आदि प्रदेशों में खूब धर्म प्रभावना की और पूर्व देश के तीर्थों का उद्धार किया। पाटन के सूबेदार को उपदेश देकर श्रीहीरविजयसूरिजी के स्मारक का निर्माण कराया और उसके रक्षण के लिए सूबेदार ने 100 बीघा जमीन दी वर्तमान समय में भी यह स्मारक **दादाबाड़ी** के नाम से प्रसिद्ध है।

बादशाह अकबर की तरह बादशाह जहांगीर भी अक्सर जैन विद्वानों के साथ **जैन दर्शन** पर वाद-विवाद किया करता था। जब जहांगीर मांडू में था, तब उसने आचार्य विजयदेवसूरि के बारे में सुना तो जैन धर्मोपदेश सुनने के लिए उन्हें आमन्त्रित किया। बादशाह का निमन्त्रण मिला सूरिजी उस समय खम्भात में थे खम्भात से विहार करके आश्विन शुक्ला तेरस संवत 1673 (सन् 1616) को मांडू पहुँचे। बादशाह इनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ। सूरिजी ने बादशाह को उपदेश देकर जीव दया के अनेक कार्य करवाये।

बादशाह के यहां से विहार कर सूरिजी पाटण होते हुए ईडर आये। ईडर के पास सावली नामक ग्राम है, वहां के श्रावक रत्नसिंह पारख ने वहां जीव-हिंसा की अधिक प्रवृत्ति को देखकर सूरिजी से सावली आने की विनती की। सूरिजी सावली आये वहां के ठाकुर को प्रतिबोधित कर जीव-हिंसा रुकवा दी।[1]

---

1. विजयदेवसूरिन्द्रं वसन्तं तत्र साम्प्रतम्। प्रणत्य रत्नसिंहो यं श्राद्धो विज्ञपयत्यथ श्रीपूज्यराजसाथन्त श्रीसमाजविराजितः सायलीग्राममागच्छ सर्वजीवहिताय हि जीव-हिंसा प्रभूतात्र जायते पापभूपतः त्वदागमनतस्तस्या निवृत्तिर्मविता चिरम विजयदेव-महात्म्यम्-श्री श्रीवल्लभपाठक-सर्ग 9 श्लोक 84,85,86

यहां से ईडर सिरोही होते हुए सूरिजी मारवाड़ पहुँचे। सूरिजी के प्रभाव से मारवाड़ का दुर्भिक्ष नष्ट हो गया, अच्छी वृष्टि हुई जिससे वह शुष्क प्रदेश भी नदी मातृक हो गया। मारवाड़ से मेवाड़, गुजरात, काठियावाड़, आदि होते हुए तैलंग देश में आये यहाँ के बादशाह ने सूरिजी के उपदेश से गौहत्या का निषेध कर दिया। इसी तरह बीजापुर के बादशाह ने सूरिजी के प्रभाव से बन्दियों को छोड़ दिया।

इस भूतल पर जीव दया के अनेक कार्य करवाते हुए आषाढ़ सुदी ग्यारस संवत् 1713 (सन् 1656) में इनका स्वर्गवास हो गया इनके बाद पट्टधर आचार्य विजयप्रभसूरि हुए।

(ब) खरतरगच्छ के प्रमुख आचार्य

खरतरगच्छ की उत्पत्ति— गुजरात की राजधानी पाटण में राजा दुर्लभराज की राज्यसभा में श्री जिनेश्वर सूरिजी पधारे। वहां पर चैत्यवासी आचार्यों और श्री जिनेश्वर सूरिजी के बीच शास्त्रार्थ हुआ जिसमें श्री जिनेश्वर सूरिजी की विजय हुई। महाराज दुर्लभ राज ने श्री जिनेश्वर सूरिजी के पक्ष में निर्णय देते हुए उन्हें खरा बताया जो बाद में विरुद्द बन गया। तभी से खरतरगच्छ की उत्पत्ति मानी जाती है। मुगलकाल में इस गच्छ के प्रमुख आचार्य श्री जिनमाणिक्यसूरी, जिनचन्द्रसूरी, जिनसिंहसूरी एवं जिनराजसूरी हुए।

1. आचार्य श्रीजिनमाणिक्यसूरि— सूरिजी का जन्म संवत 1549 (सन् 1492) को कूकड़ चौपड़ा गौत्रीय परिवार में हुआ। इनके माता-पिता क्रमशः रयणा देवी और राउल देव ने इनका नाम **सारंग** रखा। संवत 1560 (सन् 1503) में जिनहंसजी के पास दीक्षा ग्रहण की। जिनहंसजी ने इनकी योग्यता और विद्वता को देखकर माघ शुक्ला पंचमी संवत् 1582 (सन् 1525) को आचार्य पदवी देकर अपने पट्ट पर स्थापित किया। आचार्य पदवी पाकर गुर्जर, पूर्व देश सिन्ध

---

1. प्रमुख वृद्धि वाला।

और मारवाड़ आदि देशों में पर्यटन किया। सिन्धु देश में शाह धनपति कृत महोत्सव से पन्च नदी के पांच पीर आदि को साधन किया। उस समय गच्छ के साधुओं में शिथिलाचार बढ़ा हुआ था। सूरिजी के मन में परिग्रह त्यागकर क्रियोद्धार करने की तीव्र इच्छा हुई। बीकानेर के मन्त्री बच्छावत संग्रामसिंह को भी गच्छ की ऐसी स्थिति से असन्तोष था। इसलिए उसने गच्छ की रक्षा के लिये सूरिजी को बुलाया। सूरिजी ने भाव से क्रियोद्वार करके देराउर की यात्रार्थ विहार किया। जैसलमेर की ओर जाते समय मार्ग में पानी की कमी के कारण पिपासा परीषह उत्पन्न हुआ। सूर्यास्त के बाद जल मिलने के कारण सूरिजी ने अपना व्रत भंग नहीं किया और शुभ ध्यान में अनशन द्वारा आषाढ़ शुक्ला पंचमी संवत 1612 (सन् 1555) को स्वर्ग सिधारं गये।

2. आचार्य श्रीजिनचन्द्रसूरि— जोधपुर राज्य के खेतासर ग्राम में ओसवाल जाति के रीहडगोत्रीय शाह श्रीवंत अपनी पत्नी श्रिया देवी के साथ निवास करते थे, एक पुण्यवान जीव उत्तम गति से श्रियादेवी के गर्भ में आया। समय पूर्ण होने पर श्रियादेवी ने चैत्र बदी बारस संवत् 1595[1] (सन् 1538) को कामदेव के सद्दश्य रूप लावण्य वाला, सूर्य के समान तेजस्वी, शुभलक्षण युक्त पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम **सुल्तान कुमार** रखा गया।

सम्वत् 1604 (सन् 1547) को जिनमाणिक्य सूरिजी खेतासार ग्राम में आये। उनके वचनों से सुल्तान कुमार के मन में वैराग्य भावना जागी तो उन्होंने जिनमाणिक्य सूरिजी से दीक्षा ग्रहण कर ली। गुरु ने दीक्षा नाम **सुमति धीर** रखा। विलक्षण बुद्धि होने से नौ वर्ष की

1. पट्टावली संग्रह एवं युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि में सूरिजी का जन्म सम्वत् 1595 बताया गया है तथा उम्र 9 वर्ष यानि दीक्षा सम्वत् 1604 जो उचित है लेकिन खरतरगच्छ इतिहास में इनका जन्म सम्वत् 1598 अंकित है जो उसमें दी गई दीक्षा की उम्र 1 वर्ष से मेल नहीं खाता। अतः इनका जन्म सम्वत् 1595 ही उचित प्रतीत होता है।

अल्पायु में ही सकल शास्त्रों में पारंगत हो गये। शास्त्रों में निपुण होकर गुरु के साथ सारे देश में विचरण करने लगे। संवत् 1612 (सन् 1555) में गुरु का स्वर्गवास हो जाने से **सुमति धीर** जैसलमेर आये। सूरिजी के साथ 24 शिष्य थे संयोगवश वे किसी को पट्टधर न बना सके। श्रीसंघ ने **सुमतिधीर** को ही इस पद के योग्य समझकर बेगडगच्छ के आचार्य श्रीपूज्य गुणप्रभसूरिजी के हाथों भादों सुदि नवमी सम्वत् 1612 (सन् 1555) को आचार्य पदवी प्रदान कराई। आचार्य पद प्राप्त करने के बाद **सुमतिधीर** जिनच्चन्द्रसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

अब सूरिजी ने निरन्तर सर्वत्र विहार कर जीवों को प्रतिबोध देना प्रारम्भ किया। सम्वत् 1624 (सन् 1567) नाडलाई के चतुर्मास की घटना विशेष उल्लेखनीय है कि मुगल सेना नाडलोई के बहुत ही निकट आ गई थी लूटपाट और मारकाट के भय से व्याकुल होकर जनता इधर उधर भागने लगीं। श्रीसंघ ने सूरि महाराज से भी बच निकलने के लिए कहा। सारा नगर खाली हो गया। किन्तु सूरिजी उपाश्रय में ही ध्यान लगाकर बैठे रहे उनके ध्यान बल से मुगल सेना मार्ग भूलकर अन्यत्र चली गई। सब लोग प्रसन्नता पूर्वक अपने-अपने घर आए और सूरिजी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनकी प्रशंसा करने लगे।

इस तरह सूरिजी ने हजारों श्रावकों पर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डाला। जैन दर्शन का सद्बोध देकर धर्म में दृढ़ किया। अनेक स्थानों में जिनालय व जिनबिम्बों की प्रतिष्ठायें, उपधान, व्रत, ग्रहण आदि धार्मिक कृत्य करवाये। परपक्षियों के आक्षेपों का उत्तर देने में और विद्याभिमानी पंडितों को निरुत्तर करने में सूरिजी की प्रतिभा बहुत बढ़ी चढ़ी थी।

इस तरह सूरिजी की कीर्ति सर्वत्र फैलते-फैलते सम्राट अकबर के दरबार तक भी जा पहुँची। सम्राट की इच्छा सूरिजी के दर्शनों की हुई इसलिए उसने सूरिजी को अपने दरबार में आमन्त्रित किया। अकबर और जहाँगीर के दरबार में इन्होंने अच्छी ख्याति पाई।

66 वर्षों के परिश्रम से जैन शासन का सुदृढ़ प्रचार करके आश्विन वदी दूज सम्वत् 1670 (सन् 1613) को सूरिजी का स्वर्गवास हो गया।

3. आचार्य श्रीजिनसिंह सूरि— खेतासर ग्राम में माघ सुदी पूनम सम्वत् 1615 (सन् 1558) की माता चाम्पल (चतुरंग देवी) और पिता शाहचांपसी के गोत्रीय परिवार में इनका जन्म हुआ। माता पिता ने मानसिंह नाम दिया। सम्वत् 1623 (सन् 1566) में आचार्य जिनचन्द्रसूरि के उपदेशों से प्रभावित होकर 8 वर्ष की उम्र में ही उनके पास दीक्षा ग्रहण कर **महिमराज** नाम पाया। निर्मल चरित्र और विनयवान होने के कारण सूरिजी ने इन्हें जैसलमेर में माघ शुक्ला पंचमी सम्वत् 1640 (सन् 1583) को वाचक पद से अलंकृत किया। जिनचन्द्रसूरि ने अकबर के दरबार में जाने से पहले महिमराज जी को भेजा था। संवत् 1649 (सन् 1592) को लाहौर में इन्हें आचार्य पद देकर **जिनसिंहसूरि** नाम रखा गया। इस अवसर पर अकबर के मन्त्रि कर्मचन्द्र ने करोड़ों रुपया व्यय कर उत्सव मनाया। अनेकों शिलालेखों और ग्रन्थ प्रशस्तियों में इनका नाम मिलता है।

सम्वत् 1670 (सन् 1613) की बेनातट चातुर्मास में गुरु ने इन्हें गच्छनायक पद प्रदान किया। गाँव-गाँव में विचरण करते व जीवों को भी उपदेश देते हुए पौष सुदि तेरस सम्वत् 1674 (सन् 1617) की मेड़ता में सूरिजी का स्वर्गवास हो गया।

4. आचार्य श्री जिनराजसूरि— छत्रयोग, श्रवण नक्षत्र में वैशाख सुदि सप्तमी सम्वत् 1647 (सन् 1590) को बोहित्थरा गोत्रीय परिवार में इनका जन्म हुआ। माता धारलदेवी और पिता शाह धर्मसी ने इनका नाम खेतसी रखा। मार्गशीर्ष शुक्ला तेरस सम्वत् 1656 (सन् 1599) को आचार्य जिनसिंहसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा का नाम **राजसिंह** रखा। आचार्य जिनसिंह ने बड़ी दीक्षा देकर **राजसमुद्र** नाम रखा उन्होंने ही सम्वत् 1668 (सन् 1611) में आसाउल में उपाध्याय

पद दिया। मेडता में आचार्य जिनसिंह सूरि का स्वर्गवास हो जाने के कारण फागुन सुदि सप्तमी सम्वत् 1674 (सन् 1617) में इन्हें आचार्य पद देकर गच्छ का नायक बनाया गया इन्होंने अनेक मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई। मार्गशीर्ष बदि चार सम्वत् 1686 (सन् 1629) को सूरिजी आगरा में सम्राट शाहजहां से मिले। ये न्याय, सिद्धान्त और साहित्य के बड़े भारी विद्वान थे। पाटण में आषाढ़ शुक्ला नवमी सम्वत् 1699 (सम्वत् 1642) को इनका स्वर्गवास हो गया।

(स) तत्कालीन हिन्दू समाज की स्थिति

संसार परिवर्तनशील है। क्षण-क्षण में परिवर्तन प्रकृति का नियम है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो हर परिस्थिति में विद्यमान रहे। जिस सूर्य को हम सबेरे ही अपनी प्रखर-प्रतापी किरणें फैलाते हुए उदयाचल के सिंहासन पर-आरूढ़ होता देखते हैं, वहीं सन्ध्या के समय निस्तेज हो, क्रोध से लाल बन अस्ताचल की गहन गुफा में छिपता हुआ दृष्टिगोचर होता है। संसार की परिवर्तनशीलता उदय के बाद अस्त और अस्त के बाद उदय, सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख इस तरह से यह संसार अनादि काल से चला आ रहा है।

इसी तरह यदि हम भारत के प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालें, तो पता चलता है कि हमारा प्राचीन इतिहास कितना गौरवमय और उज्जवल है। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में इस देश का अतीत गौरव सर्वोपरि है। भारत का सामाजिक उत्कर्षण किसी भी प्रकार न्यून नहीं था। सामाजिक संगठन बहुत ही सुव्यवस्थित था। आचार-विचारों की पवित्रता आदि भारत की सामाजिक उन्नति का उज्जवल अतीत गौरव इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों से अंकित है।

किसी के सब दिन एक जैसे नहीं होते। भारत भी इसका शिकार हुआ। कालचक्र के प्रबल झकोरों में पारस्परिक फूट आदि दुर्गुण के कारण इस देश की शक्ति इतनी क्षीण हो गई कि पृथ्वीराज

चौहान की मृत्यु के पश्चात् भारत की जनता निरन्तर विदेशी आक्रमणकारियों से त्रस्त होती रही।

इस तरह की अनेक विपत्तियाँ झेलते हुए भारत ने सोलहवीं शताब्दी में पदार्पण किया।

उस समय मुसलमान बादशाहों ने अपनी कठोर राजनीति और असहिष्णु वृत्ति से भारतवासी लोगों को असह्य यन्त्रणायें देना प्रारम्भ कर ही दिया था। इस्लाम धर्म की एकमात्र वृद्धि के अभिलाषी, अत्याचारी, मलेच्छों ने इस अन्याय प्रवृत्ति को चरम सीमा तक पहुँचा दिया। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के सूबेदार अपनी-अपनी प्रजा को बहुत सताते थे। इस्लाम धर्म अस्वीकार करने वालों पर नाना प्रकार के कर लगा दिये थे, जिनमें तीर्थ-यात्री कर और वार्षिक **'जजिया'** प्रजा को बरबाद करने के लिए पग-पग पर अपना भयंकर रूप धारण किये हुए खड़े थे। सामान्य अपराधियों के भी हाथ पैर काट डालने की, प्राण ले लेने की आदि इसी प्रकार की क्रूर सजायें दी जाती थी। जजिया भी कोई असाधारण कर तो था नहीं। आठवीं शताब्दी में मुसलमान बादशाह कासिम ने भारतीय प्रजा पर यह कर लगाया था पहले तो उसने आर्य प्रजा को इस्लाम स्वीकार करने पर विवश किया। आर्य प्रजा ने अटूट धन दौलत देकर अपने आर्य धर्म की रक्षा की फिर हर साल ही वह प्रजा से जजिया कर के रूप में रुपया वसूल करने लगा। फरिश्ता ने तो इस कर को **मृत्यु तुल्य दण्ड** की संज्ञा दी थी। ऐसा दण्ड लेकर भी आर्य प्रजा ने अपने धर्म की रक्षा की थी। यही दण्ड सोलहवीं शताब्दी में भी मौजूद था। इस कर को न देने वाली आर्य प्रजा के प्राण तक ले लिए जाते थे। यद्यपि ऐसा नहीं था कि कर की रकम बहुत ज्यादा थी, लेकिन यह कर केवल हिन्दुओं पर लगता था इसलिये उन्हें अपनी स्थिति मुसलमानों से हीन लगती थी। ऐसे संकटमय समय में अपने पूर्वजों के गौरव की रक्षा करना तो दूर रहा बल्कि जीवन निर्वाह करना भी आर्य प्रजा के लिए दुष्कर हो गया था।

अपने अपने धन, कुटुम्ब और धर्म की रक्षा में ही जब वे समर्थ न हो सके तब पारस्परिक प्रेम, संगठन शिक्षा आदि बातों का ह्रास होना स्वाभाविक है। बाल-विवाह, पर्दे की प्रथा आदि कतिपय घातक कुरीतियाँ भी इसी समय में प्रचलित हुई।

इस संकटावस्था में वास्तविक धार्मिकता मुरझा गई थी। इन कष्टों को सहन करते समय आध्यात्मिक तत्व चिन्तन का उन्हें समय ही नहीं मिलता था। इस समय तो सारा हिन्दू समाज एक स्वर से अपने-अपने इष्ट देवों से यही विनय करता था–**प्रभो इन दुख के दिनों को दूर करो। इस भयंकर अत्याचार को भारत से उठा लो हमारे आर्यत्व की रक्षा करो देश में शान्ति का राज्य स्थापन करो हम अन्तःकरण पूर्वक चाहते हैं कि वीर प्रसू भारत माता की कूख से, फिर से तत्काल ही एक ऐसा महानवीर पुरुष उत्पन्न हो जो देश में शीघ्रता से शान्ति का राज्य स्थापन करे और हमारे ऊपर होने वाले इस जुल्म को जड़ से खोद डालें। ओ भारत माता! क्या तू ऐसा समय न लायेगी, कि जिसमें हम अपने दुःख के आंसू पौंछ डालें।**

और फिर जैसा कि प्रकृति का नियम है कि अवनति के पश्चात् उन्नति का होना। इसी अटल नियम के अनुसार समय-समय पर विकृत परिस्थितियों को सुधारने के लिये महापुरुषों का जन्म हुआ करता है जैसे देशहित का आधार देश का राजा होता है वैसे ही सत्चरित्र विद्वान महात्मा भी है। विद्वान साधु महात्मा जैसे प्रजा हित के लिए उसको अनीति से दूर रखकर सन्मार्ग पर चलाने के प्रयत्न करते हैं वैसे ही राजाओं को भी निर्भीकता पूर्वक उनके धर्म समझाते हैं। घनिष्ठ सम्बन्धियों और खुशामदियों का जितना प्रभाव राजा पर नहीं होता, उतना प्रभाव शुद्ध चरित्र वाले मुनियों के एक शब्द का होता है।

इतिहास देखने पर हमें इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि राजाओं को प्रतिबोध देने में जो सफल हुए वे धर्म गुरु ही थे जैसे सम्प्रति राजा को प्रतिबोध करने का सम्मान आर्य सुहस्ती ने, आमराजा

को प्रतिबोध करने का सम्मान बप्पभट्टी ने, कुमारपाल को प्रतिबोध करने का सम्मान हेमचन्द्राचार्य ने प्राप्त किया। इसी तरह जिस युग की हम बात कर रहे हैं उस युग में भी हिन्दुओं की सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए सुयोग्य सम्राट के साथ-साथ महात्मा पुरुषों की भी आवश्यकता थी।

शास्त्रों ने कहा है कि जगत में जब-जब धर्म की कोई विशेष हानि होने लगती है तब-तब उसकी परीक्षा करने के लिए अवश्य ही किसी महाज्योति युग प्रधान का अवतार होता है।

सोलहवीं शताब्दी में तत्कालीन सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिये जैन सन्तों ने जो सहयोग दिया, इस विवेचन को आगे के लिये छोड़कर पहले हम यह देखेंगे कि प्राचीन जैनाचार्यों का सामाजिक योगदान क्या रहा?

(द) जैनाचार्यों का सामाजिक योगदान

यदि इतिहास के पृष्ठ पलटकर देखें तो पता चलता है कि समय-समय पर विभिन्न जैनाचार्य राजाओं के पास आये और राजाओं ने भी गुरुओं के समान उन्हें सम्मान दिया। राजाओं को प्रतिबन्ध देकर तत्कालीन सामाजिक दोषों को दूर करवाने में जैनाचार्यों का विशेष योगदान रहा। देश में जीव-हिंसा, त्याग, दया, दान सत्य और साधुता का प्रचार करने में जैन साधुओं का शलाधनीय योगदान रहा।

राजपूत काल—

राजपूत काल का इतिहास देखने पर पता चलता है कि जैन धर्म कितना प्राचीन है। चावड वंश के संस्थापक वनराज का पालन-पोषण एक जैन सुरी ने किया था। इससे भी जैन धर्म के प्रचलन की स्थिति विदित होती हैं।

गुजरात और भारत के इतिहास में सम्राट चौलुक्य कुमारपाल का चरित्र अद्वितीय है जिसे जैन हेमचन्द्राचार्य ने अपनी रचना **महावीर चरित्र** में **चालुक्य वंश** का चन्द्रमा कहा है। कुमारपाल के समय

गुजरात का समाज पशु-वध, मासांहार, मद्यपान, वैश्यागमन तथा लूटपाट के बुरे परिणामों से अभिप्राप्त हो गया था। इस समय राज्य का एक अत्यन्त ही निन्दाजनक नियम था कि राज्य के अधिकारी बिना उत्तराधिकारी के मृत व्यक्ति के घर की सभी सम्पत्ति और वस्तुओं पर अधिकार कर लेते थे तभी सब को अन्तिम संस्कार के लिये जाने देते थे। इस तरह की अनेक बुराइयों से उस समय गुजरात समाज अभिशप्त था।

कुमारपाल प्रतिबोध से पता चलता है कि अपने मन्त्री के परामर्शानुसार कुमारपाल हेमचन्द्र से उपदेश ग्रहण करने लगे थे।

पहले हेमचन्द्र ने पशु-वध, मांसाहार, पद्यपान, वैश्यागमन तथा लूटपाट की बुराइयों को दिखाने वाली कथाओं द्वारा कुमारपाल को उपदेश दिया। उन्होंने कुमारपाल को राजाज्ञा, निकालकर राज्य में इनका निषेध करने की प्रेरणा दी। जयसिंह रचित कुमारपाल चरित के पांच से लेकर दस सर्गों में उन परिस्थितियों का वर्णन किया गया है, जिनके कारण कुमारपाल जैन धर्म में दीक्षित और जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में प्रवृत्त हो गया। आचार्य हेमचन्द्र के कहने पर उसने सर्वप्रथम अपने राज्य में मांस तथा मदिरा का त्याग किया वैसे तो प्रबन्धगत प्रमाणों से प्रतीत होता हैं कि कुमारपाल जैन धर्मानुयायी होने से पहले मांसाहार तो करता था, लेकिन मद्यपान की तरफ से उसे हमेशा घृणा रही है।

कुमारपाल ने हेमचन्द्र से श्रावक धर्म स्वीकार कर राज्य में पशु-हत्या पर प्रतिबन्ध लगाया था रत्नापुरी नगर के शिलालेख से पता चलता है कि विशेष तिथियों में पशु-वध निषेध की आज्ञा थी। यह आज्ञा केवल कागजों तक ही सीमित न थी वरन् इसका इतनी कठोरता से पालन होता था। **सपादलक्ष** के एक व्यापारी ने राक्षस के समान रक्त चूसने वाले एक कीड़े की हत्या कर दी तो उसे पकड़ लिया गया और

उसे यूक विहार के शिलांयास के लिए समस्त सम्पत्ति त्याग देने के लिये बाध्य होना पड़ा।[1] इस तरह राज्य परिवार का व्यक्ति आर्थिक दण्ड देकर तथा साधारण व्यक्ति प्राण दण्ड के लिए प्रस्तुत होकर ही निषेधाज्ञा के दिन किसी पशु हिंसा रोकने के लिए अपने मंत्रियों को काशी भेजा। हेमचन्द्राचार्य ने अपने **महावीर चरित्र** नामक पुराण ग्रन्थ में भगवान महावीर के मुख से भविष्य कथन रूप में ये शब्द कहे हैं- "भविष्य में कुमारपाल राजा होने वाला हैं, उसकी आज्ञा से सब मनुष्य मृगया का त्याग करेंगे जिस मृगया का पांडु के सदृश्य धार्मिष्ठ राजा भी त्याग न कर सके और न करवा सके। हिंसा का निषेध करने वाले इस राजा के समय में शिकार की बात तो दूर रही खटमल और जूं जैसे जीवों को अन्त्यज जन भी दुख नहीं पहुंचा सकेगे। इस प्रकार मृगया के विषय में निषेधाज्ञा होने पर मृग आदि पशु निर्भय होकर बाड़े में गायों की तरह चरने लगेंगे। इस प्रकार जलचर प्राणियों, पशुओं और पक्षियों के लिए वह सदा अमारि रखेगा और उसकी ऐसी आज्ञा से आजन्म मांसाहारी भी दुस्वप्न की तरह मांस को भूल जायेंगे[2]"

---

1. जयसिंह रचित कुमारपाल चरित पृष्ठ 588
2. कुमारपाल चरित्र संग्रह—जिनविजयमुनि पृष्ठ 29

जैन ज्योतिष साहित्य

स्व. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य

रत्नशेखर सूरि ने दिनशुद्धि दीपिका नामक एक ज्योतिष ग्रन्थ प्राकृत भाषा में लिखा है। इनका समय 15वीं शती बताया जाता है। इस ग्रन्थ के अन्त में निम्न प्रशस्ति गाथा मिलती है।

सिरिवयरसेणगुरुपट्ट-नाहि सिरिहेमतिलय सूरीणं।
पायपसाया एसा, रयण सिहरसूरिणा बिहिया ।।144।।

वज्रसेन गुरु के पट्टधर श्री हेमतिलक सूरि के प्रसाद से रत्नशेखर सूरि ने दिनशुद्धि प्रकरण की रचना की।

इसे 'मुनिमणभवणपयासं' अर्थात् मुनियों के मन रूपी भवन को प्रकाशित करने को कहा है। इसमें कुल 144 गाथाएं हैं। इस ग्रन्थ में वारद्वार, काथहोरा, वारप्रारम्भ कुलिकादियोग वर्ज्यप्रहर नन्दभद्रादि संज्ञाएं, क्रूरतिथि, वर्ज्यतिथियोग अमृतसिद्धियोग, उत्पादियोग, लग्नविचार, प्रयाणकालीन शुभाशुभं विचार, वास्तु मुहूर्त्त, षडष्टकादि, राशिकूट, नक्षत्रयोनि विचार, विविध मुहूर्त्त, नक्षत्र दोष विचार, छायासाधन और उसके द्वारा फलादेश एवं विभिन्न प्रकार के शकुनों का विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ व्यवहारोपयोगी है।

चौदहवीं शताब्दी में ठक्कर फेरु का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने गणितसार और जोइससार ये दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। गणितसार में पाटीगणित और परिकमष्टिककी मीमांसाकी गई है। जोइससार में नक्षत्रों की नामावली से लेकर ग्रहों के विभिन्न योगों का सम्यक् विवेचन किया गया है।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त हर्षकीर्ति कृत जन्मपत्रपद्धति, जिनवल्लभ कृत स्वप्न संहित, जयविजय कृत शकुन दीपिका, पुण्यतिलक

कृत ग्रहायुसाधन, गर्ग मुनि कृत पासावली समुद्र कवि कृत सामुद्रिक-शास्त्र, मानसागर कृत मानसागरीपद्धति, जिनसेनकृत निमित्तदीपक आदि ग्रन्थ भी महत्त्वपूर्ण हैं। ज्योतिषार, ज्योतिषसंग्रह, शकुनसंग्रह, शकुनदीपिका, शकुनविचार, जन्मपत्री पद्धति, ग्रहयोग, ग्रहफल नाम के अनेक ऐसे संग्रह ग्रन्थ उपलब्ध है, जिनके कर्त्ता का पता ही नहीं चलता है।

अर्वाचीन काल में कई अच्छे ज्योतिर्विद् हुए हैं। जिन्होंनें जैन ज्योतिषसाहित्य को बहुत आगे बढ़ाया।[1] यहाँ प्रमुख लेखकों का उनकी कृतियों के साथ परिचय दिया जाता है। इस युग के सबसे प्रमुख मेघविजयगणि ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे। इनका समय वि. सं. 1737 के आस-पास माना गया है। इनके द्वारा रचित मेघमहोदय या वर्ष प्रबोध, उदयदीपिका रमलशास्त्र और हस्तसंजीवन आदि मुख्य है। वर्ष प्रबोध में 13 अधिकार और 35 प्रकरण है। इसमें उत्पातप्रकरण, कर्पूरचक्र, पद्मिनीचक्र मण्डलप्रकरण, सूर्य और चन्द्रग्रहण का फल, मास-वायु विचार, संवत्सरका फल, ग्रहों के उदयास्त और वक्री-अयन मास-पद विचार, संक्रान्तिफल, वर्ष के राजा, मंत्री, धान्येश, रसेरा आदि का निरूपण, आय-व्यय विचार, सर्वतोभद्रचक्र एवं शकुन आदि विषयों का निरूपण किया गया है। ज्योतिष विषय की जानकारी प्राप्त करने के लिए यह रचना उपयोगी है।

हस्तसंजीवन में तीन अधिकार हैं। प्रथम दर्शनाधिकार में हाथ देखने की प्रक्रिया, हाथ की रेखाओं पर से ही मास, दिन, घटी, फल आदि का कथन एवं हस्तरेखाओं के आधार पर ही लग्नकुण्डली तथा उसका फलादेश निरूपण करना वर्जित है। द्वितीय स्पर्शनाधिकार में हाथ की रेखाओं के स्पर्श पर से ही समस्त शुभाशुभ फल का

1. केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणिका प्रस्तावना भाग।

प्रतिपादन किया गया है। इस अधिकार में मूक प्रश्नों के उत्तर देनें की प्रक्रिया भी वर्णित है। तृतीय विमर्शनाधिकार में रेखाओं पर से ही आयु, संतान, स्त्री, भाग्योदय, जीवन की प्रमुख घटनाएं, सांसारिक सुख, विद्या, बुद्धि, राज्यसम्मान और पदोन्नति का विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से महत्त्वूण्ण और पठनीय है।

उभयकुशल—का समय 18वीं शती का पूर्वार्द्ध है। ये फलित ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता है। इन्होंने विवाहपटल और चमत्कार चिंतामणि टबा नामक दो ग्रंथों की रचना की है। ये मुहूर्त्त और जातक, दोनों ही विषयों के पूर्व पंडित थे। चिंतामणि टबा में द्वादश भावों के अनुसार ग्रहों के फलादेश का प्रतिपादन किया गया है। विवाहपटल में विवाह के मुहूर्त्त और कुण्डली मिलान का सांगोपांग वर्णन किया गया है।

लब्धचन्द्रगणि—ये खरतरगच्छीय कल्याणनिधान के शिष्य थे। इन्होंने वि. सं. 1751 में कार्त्तिक मास में जन्मपत्री पद्धति नामक एक व्यवहारोपयोगी ज्योतिष का ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ में इष्टकाल, भयात, भभोग, लगन, नवग्रहों का स्पष्टीकरण, द्वादशभाव, तात्कालिक चक्र, दशबल, विंशोत्तरी, दशा साधन आदिका विवेचन किया गया है।

बाधती मुनि—ये पार्श्वचन्द्रगच्छीय शाखा के मुनि थे। इनका समय वि. सं. 1793 माना जाता है। इन्होंने तिथि सारणी नामक ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। इसके अतिरिक्त इनके दो तीन फलित-ज्योतिष के भी मुहूर्त्त सम्बन्धी उपलब्ध ग्रन्थ हैं। इनका साखी ग्रन्थ, मकरन्द साखी के समान उपयोगी है।

यशस्वतसागर—इनका दूसरा नाम जसवंत सागर भी बताया जाता है। ये ज्योतिष, न्याय, व्याकरण और दर्शन शास्त्र के धुरन्धर विद्वान थे। इन्होंने ग्रहलाधवके ऊपर वार्त्तिक नामकी टीका लिखी है। वि. सं. 1762 में जन्मकुण्डली विषय को लेकर **यशोराज-पद्धति** नामक एक व्यवहारोपयोगी ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ जन्मकुण्डली की रचना

के नियमों के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालता है। उत्तरार्द्ध में जातक पद्धति के अनुसार संक्षिप्त फल बतलाया है।

इनके अतिरिक्त विनयकुशल, हरिकुशल, मेघराज, जिनपाल, जयरत्न, सूरचन्द्र आदि कई ज्योतिषियों की ज्योतिष सम्बन्धी रचनाएँ उपलब्ध हैं। जैन ज्योतिष साहित्य का विकाश आज भी शोध टीकाओं का निर्माण एवं संग्रह ग्रन्थों के रूप में हो रहा है।[1] संक्षेप में अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति गणित, प्रतिभागणित, पञ्चांग निर्माण गणित, जन्म पत्रनिर्माण गणित आदि गणित ज्योतिष के अंगों के साथ होराशास्त्र, संहिता,[2] मुहूर्त्त, सामुद्रिक शास्त्र, प्रश्नशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, निमित्तशास्त्र, रमलशास्त्र, पासकेवली प्रभृति फलित अंगों का विवेचन जैन ज्योतिष में किया गया है। जैन ज्योतिष साहित्य के अब तक पाँच सौ ग्रन्थों का पता लग चुका है।[3]

---

1. भाद्रबाहु संहिता का प्रस्तावना अंश।
2. महावीर स्मृतिग्रन्थ के अन्तर्गत **जैनज्योतिष की व्यावहारिकता** शीर्षक निबन्ध, पृ. 196-197.
3. वर्णी अभिनन्दनग्रन्थ के अन्तर्गत **भारतीय ज्योतिष का पोषक जैन ज्योतिष** पृ. 478-484.

हरिश्चन्द्र तारा

शमशान में सभा :

इसी के अनुसार, सत्यपालन में कष्ट चाहे सहने पड़ें, परन्तु उन कष्टों को धैर्यपूर्वक सहलेने और सत्य से विचलित न होने पर, वह स्थायी आनन्द प्राप्त होता है, जो झूठ द्वारा प्राप्त अस्थायी आनन्द से असंख्य गुना बढ़कर है। सत्यपालन करने वाले के कष्ट भी सदा नहीं रहते। वे क्षणभर के बाद ही सुख के रूप में परिणत हो जाया करते हैं। इसके लिए भर्तृहरि कहते हैं–

पातितोऽपि कराधातैरुत्पत्यैव कन्दुकः।
प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः।।

अर्थात्– जिस तरह हाथ से गिराने पर गेंद ऊपर ही उठती है, उसी तरह न्यायवृत्ति पर चलनेवालों की विपत्ति भी सदा नहीं रहती। यानी जिस तरह गेंद नीचे गिरकर ऊपर की ओर ही उछलती है, उसी प्रकार न्यायवृत्तिवाले मनुष्य भी, आपत्ति में गिरकर ऊपर की ओर उठते हैं।

थोड़ी ही देर में यह परिवर्तन देख, महाराज हरिश्चन्द्र रानी तारा से कहने लगे–प्रिये तारा! आज यह जो परिवर्तन तुम देख रही हो, यह सब तुम्हारी ही कृपा का फल है। यदि तुम मुझे उस विषयकूप से न निकालती, यदि तुम मेरा साथ न देती, यदि तुम मुझे समय-समय पर धैर्य न बँधाती रहती, और स्वयं बिककर मेरे लिए आदर्श स्थापित न करती, तो मैं निश्चय ही सत्य से पतित हो गया होता। सत्य से पतित होने पर, यह आनन्द, जो अबतक पाया है और अब भी पा रहे हैं कदापि नहीं पा सकते थे।

पति की बात के उत्तर में तारा ने कहा–नाथ, इसमें मेरी किंचित भी विशेषता नहीं है। मैंने जो कुछ भी किया है, वह करना मेरा कर्त्तव्य

था। मैंने अपने कर्त्तव्य से अधिक भी नहीं किया है। यह तो सब आप ही का प्रताप है। यदि आप राज्य दान देकर, अपने सिर पर दक्षिणा का बोझ न लेते, तो मुझे यह आनन्द कहाँ से मिलता?

शमशान में अभूतपूर्व प्रकाश देख और कोलाहल सुन काशी निवासी आश्चर्यसहित विचारने लगे, कि आज रात्रि के समय शमशान में यह प्रकाश और कोलाहल कैसा है? बहुत से लोग, शमशान की ओर इस प्रकाशमय दृश्य को देखने के लिये दोड़े। महाराजा हरिश्चन्द्र का क्रयी भंगी भी, यह विचारकर शमशान में दौड़ा हुआ आया कि आज मेरे शमशान में क्या गड़बड़ है। भंगी जैसे ही शमशान में पहुंचा और राजा की दृष्टि उसपर पड़ी, वैसे ही राजा सिंहासन पर से उतर पड़े। उन्होंने, भंगी का सत्कार करते हुए कहा, कि स्वामी! यह सब आप ही के चरणों का प्रताप है। आप ही ने मुझे खरीदकर, मेरे सत्य की रक्षा की थी, उसी का फल है।

भंगी हाथ जोड़कर राजा से कहने लगा– आप मुझे क्षमा कीजिए। आप के साथ मैंने तथा मेरी स्त्री ने बहुत अभद्र व्यवहार किया है। मैं उस पाप से दबा जा रहा हूँ। अतः आप मुझे क्षमा करके मेरा उद्धार कीजिए।

राजा– नहीं स्वामी, आपकी ओर से मेरे साथ सदा सहृदयता का ही व्यवहार हुआ है। मालकिन भी बड़ी कृपालु हैं। उन्हीं की कृपा से, मुझे शमशान रक्षा का कार्य मिला था, जिसका फल आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

सज्जन-मनुष्य, अपकारी के अपकार को तो भूल जाते हैं, परन्तु उपकारी के उपकार को, किसी समय भी नहीं भूलते। किसी उच्च स्थिति पर पहुँच जाने पर भी, वे उपकारी के उपकार को याद रखते और कृतज्ञता प्रकट करते रहते हैं। इसी के अनुसार, इस समय देवताओं से सेवित होने पर भी हरिश्चन्द्र ने, भंगी को अपना उपकारी जान, उसके सन्मुख नम्रता प्रकट की।

हरिश्चन्द्र ने, सब देवों से भंगी का परिचय कराते हुए कहा, कि ये ही मेरे स्वामी हैं। मैं, इन्हीं की कृपा से सत्यपालन में समर्थ हो सका हूँ। मेरा मूल्य न लगने के कारण, मैं सत्य भ्रष्ट हो रहा था। उस समय इन्हीं ने मुझे खरादकर मेरे सत्य की रक्षा की थी। मैं इनकी जितनी भी प्रशंसा करूँ, वह कम है। इनके उपकार से, मैं कभी उऋण नहीं हो सकता।

हरिश्चन्द्र की बात सुनकर, सब देवों ने उस भंगी की बहुत प्रशंसा की और उसका सत्कार किया।

बात की बात में, यह समाचार सारे नगर में फैल गया, कि अयोध्या के भूतपूर्व महाराजा हरिश्चन्द्र और महारानी तारा, आज शमशान में प्रकट हुए हैं यह समाचार सुनते ही, सारे नगर-निवासी शमशान में एकत्रित हो गये। काशी-नरेश भी शमशान की ओर चले। वे मन ही मन पश्चाताप करते जाते थे, कि पत्नी-पुत्र सहित महाराजा हरिश्चन्द्र मेरे ही नगर में इतने दिन रहे और मुझे इसका पता भी नहीं लगा, यह मेरे लिए लज्जास्पद बात है।

महारानी तारा का क्रयी ब्राह्मण भी, उनकी चिन्ता कर रहा था, कि दासी अबतक अपने पुत्र की अन्त्येष्टि-क्रिया करके क्यों नहीं लौटी? कहीं वह मर या भाग तो नहीं गई? इतने में ही उसने महाराजा हरिश्चन्द्र और महारानी तारा के शमशान में प्रकट होने की बात सुनी। एक पन्थ दो काज की कहावत को विचारकर ब्राह्मण भी शमशान में आया कि हरिश्चन्द्र और तारा को भी देखता आऊंगा, तथा अपनी दासी की खोज भी करता आऊँगा। शमशान में आकर जब उसने यह देखा, कि दासी तो यहाँ रानी बनी हुई बैठी है, तब तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह मन ही मन पछताने लगा कि अवध की महारानी तारा ही मेरे यहाँ दासी बनकर रहती थी। उनसे मैंने बहुत ही निकृष्ट सेवाएँ कराई और बहुत ही कठोर व्यवहार किया है। अब, मैं किस मुख से उनके सन्मुख जाऊँ?

उधर रानी भी चिन्तित थी, कि मालिक ने मुझे कुछ ही समय का अवकाश दिया था, परन्तु मुझे बहुत देर हो गई। अब भी मैं इस झंझट में फँसी हूँ, इसके लिए स्वामी न मालूम क्या कहेंगे। इतने ही में रानी की दृष्टि ब्राह्मण पर पड़ी। ब्राह्मण को देखते ही, रानी सिंहासन से उतर पड़ी, और हाथ जोड़कर ब्राह्मण से कहने लगीं– महाराज, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। मैं अन्य प्रपंच में पड़ गई थी, इसी कारण अब तक नहीं आ सकी।

तारा की प्रार्थना के उत्तर में, ब्राह्मण तारा के पैरों पर गिरकर कहने लगा–महारानीजी, मैंने अज्ञानवश आपसे दासी का काम कराया और निकृष्ट सेवाएं ली तथा आपके साथ अमानुषिकतापूर्ण कठोर व्यवहार किया। अब, मेरा वह अज्ञान नाश हो चुका है, अतः मैं आपसे क्षमा प्रार्थना करता हूँ। आप मुझे क्षमा कीजिए।

ब्राह्मण को उठाते हुए, तारा कहने लगीं—आपने मुझ पर बड़ी कृपा की है। आप ही की कृपा से, मैं आधा-ऋण चुका सकी थी। यदि, उस समय आप न होते, तो मेरे पति निःसन्देह सत्य भ्रष्ट हो जाते। आपकी वह कृपा, कभी भूलने योग्य नहीं हैं।

ब्राह्मण ने तारा के साथ बहुत ही दुर्व्यवहार किया था। लेकिन तारा ने उसके दुर्व्यवहार का जिक्र तक न किया और उसने जो सद्व्यवहार किये थे, उन्हीं की प्रशंसा करती रही।

सज्जनों में, स्वाभाविक ही यह गुण होता है, कि वे दुर्व्यवहार पर ध्यान न देकर, केवल सद्व्यवहार पर ही ध्यान देते हैं। जहाँ दुर्जन-मनुष्य, किसी के द्वारा किये गये अनेक सद्व्यवहारों पर दृष्टि न देकर, अपवाद स्वरूप जो एक आध दुर्व्यवहार हो जाता है उसी का वर्णन किया करते हैं, वहाँ सज्जन-मनुष्य, अनेक दुर्व्यवहारों की भी उपेक्षा करके, जो एक आध सद्व्यवहार हुआ होता है, उसी को महत्व देते हैं और उसी की प्रशंसा करते हैं। इसी के अनुसार, रानी भी, अपने क्रयी

के अनेक दुर्व्यवहारों पर ध्यान न देकर, उसके थोड़े से सद्व्यवहार को ही बड़ा रूप दे रही हैं।

रानी के द्वारा, ब्राह्मण के प्रति प्रकट किये गये कृतज्ञतापूर्णभावों को सुनकर, देवताओं ने ब्राह्मण की प्रशंसा करते हुए उसका भी सत्कार किया।

वे सेठ-साहूकार लोग, जिनके पास महाराजा हरिश्चन्द्र नौकरी के लिये गये थे, और जिन्होंन्ने उनकी बात भी न सुनी थी-या सुनकर टरका दिये थे—महाराजा हरिश्चन्द्र को देखकर, बहुत ही लज्जित हुए। वे राजा के सन्मुख पश्चात्ताप प्रकट करते हुए, अपने अपराध की क्षमा माँगने लगे। महाराज ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा, कि आप लोगों ने कोई अपराध नहीं किया है। आप लोग साधारण बुद्धि से पहचानने वाले-हैं ऐसी अवस्था में, बिना परिचय प्राप्त हुए मुझे कैसे पहचान सकते थे? यदि इस पर भी आप अपने को अपराधी समझते हैं तो इसका प्रायश्चित यहीं है, कि भविष्य में अपने यहाँ आये हुए किसी दीन-दुःखी का अपमान करके, उसे दुतकारिये नहीं, किन्तु उसका दुःख दूर करने की चेष्टा कीजिए।

काशी नरेश, शमशान में पहुँचकर महाराजा हरिश्चन्द्र से कहने लगे, कि मैं नितान्त-अज्ञानी और हत्भाग्य नरेश हूँ। आपने इतने दिन मेरे नगर में रहकर कष्ट उठाये, लेकिन मुझे इसकी खबर तक नहीं, इससे अधिक अज्ञानता क्या होगी? आप मेरे अपराध को क्षमा कीजिए और कृपा करके यह बतलाइये, कि इस अज्ञानता तथा अपराध का क्या प्रायश्चित करूँ?

हरिश्चन्द्र ने काशीनरेश का सत्कार करके उन्हें आश्वासन दिया और कहने लगे, कि आप अकारण ही पश्चात्ताप करते हैं। यदि आपको, मेरे आने की सूचना मिली होती, तो आप मुझसे अवश्य ही मिलते। लेकिन जब मैंने किसी को अपना परिचय ही नहीं दिया और परिचय न

देने के कारण आपको सूचना ही नहीं मिली, ऐसी अवस्था में आपका क्या अपराध है मैंने किसी को अपना पता नहीं दिया इसका कारण स्पष्ट है। परिचय देने से आप निश्चय ही मुझे अपने महल को लिवा ले जाते और मेरा ऋण चुकाकर, मुझे अपना अतिथि बनाते। ऐसी दशा में आज आप जो रचना देख रहे हैं, यह रचना कैसे होती? इसलिए आप इस विषय में खेद न कीजिए। खेद की बात यह अवश्य हो सकती है कि जिस काशी की भूमि पवित्र मानी जाती है, जिस काशी में अयोध्या से आकर मैंने लाभ उठाया है, जिस काशी की भूमि में मैं अपने सत्यपालन में समर्थ हो सका हूँ और सत्यपालन के लिये बिकने में भी मुझे लज्जा न आई, आपलोग उसी काशी के निवासी होकर वहीं रहते हुए सत्य का पालन न कर सकें। काशी की भूमि, तभी लाभदायक हो सकती है, जब यहाँ सत्य का पालन हो। बिना सत्य पालन किये, काशी की भूमि उसी प्रकार लाभप्रद नहीं हो सकी, जैसे खेत उपजाऊ होने पर भी उसमें बीज न बोने से वह लाभप्रद नहीं हो सकता। यदि केवल यहाँ रहने का ही महत्व होता तो फिर मुझे बिकने की क्या आवश्यकता थी? लेकिन वास्तव में किसी क्षेत्र-विशेष का महत्व नहीं है, अपितु चरित्र का महत्व है। अन्य स्थान में रहकर भी जो चारित्रवान है, उसके लिये वह भूमि भी काशी की भूमि से विशेष लाभप्रद है। और काशी की भूमि में रहकर भी जो चारित्र का पालन नहीं करता उसके लिये सभी भूमि समान ही है। अतः सत्यपालन द्वारा, इस भूमि से लाभ उठाइए और राज्य के धन को, प्रजा की धरोहर समझकर, उसे प्रजाहित के कार्यों में लगाइये। तथा ऐसा करते हुए अपनी आत्मा का कल्याण चिंतन कीजिए। इस प्रायश्चित से, आपका खेद भी मिट जाएगा और आपका लाभ भी होगा।

इसी प्रकार सभी काशी-निवासियों ने राजा-रानी का अपने नगर में रहने पर भी न पहचान सकने का, पश्चाताप किया। राजा ने सबको आश्वासन दिया और उन्हें समझाया, कि जब मैंने अपना परिचय ही किसी को नहीं, दिया तब आप लोग अकारण ही पश्चात्ताप

क्यों करते हैं। इस प्रकार, सबके हृदय को राजा ने सहृदयतापूर्ण-भाषा से शान्त किया।

अयोध्या से चले हुए विश्वामित्र भी उसी समय काशी आ पहुँचे, जिस समय शमशान में यह सब लीला हो रही थी। शमशान में अद्भुत प्रकाश देख, तथा हरिश्चन्द्र और तारा के जयघोष के साथ-साथ बहुत कोलाहल सुन, विश्वामित्र भी वहीं पहुँच गये। वहाँ जाकर देखते हैं, कि जिन राजा रानी को खोजने के लिये वे निकले हैं, वे महाराजा हरिश्चन्द्र सिंहासन पर विराजमान हैं, उनके पास ही रोहित को गोद में लिए हुए तारा बैठी है और इन्द्रादि सब देव उनकी स्तुति कर रहे हैं। विश्वामित्र वहीं से उच्च-श्वर में हरिश्चन्द्र और तारा का जयघोष करने लगे। हरिश्चन्द्र ने जैसे ही विश्वामित्र को देखा, वैसे ही तारा सहित सिंहासन पर से उतर पड़े। हरिश्चन्द्र, तारा और रोहित ने विश्वामित्र को प्रणाम किया। उपस्थित लोग, विश्वामित्र और हरिश्चन्द्र दोनों के व्यवहार को देखकर आश्चर्यचकित रह गये और विचारने लगे, कि ये वे ही विश्वामित्र हैं, जिन्होंने हरिश्चन्द्र को इतने कष्ट में डाला था, परन्तु आज स्वयं ही हरिश्चन्द्र और तारा का जयघोष कर रहे हैं। तथा ये हरिश्चन्द्र और तारा भी वे ही हैं, जिन्होंने विश्वामित्र द्वारा इतने कष्ट पाये हैं, फिर भी अपने कष्टदाता-विश्वामित्र का सत्कार कर रहे हैं।

विश्वामित्र ने राजा और रानी से कहा, कि आप लोग सिंहासन पर ही बैठिए। आपलोगों की महिमा, अब मेरी समझ में आई हैं। अब तक मैं समझता था, कि मेरा क्रोध ही अपार बल है, परन्तु अब मैं इतने अनुभव के पश्चात् यह बात स्वीकार करता हूँ, कि आपलोगों का सत्य और धर्म मेरे क्रोध से भी अपार बलवान है। जिस बात को मैंने हठवश अब तक स्वीकार न किया था, वहीं बात आज आप लोगों के सत्य से पराजित हो, मैं स्वीकार करता हूँ कि आप लोगों ने अपने सत्य और अपनी सहनशीलता द्वारा, मेरे तप को पराजित कर दिया, तथा इसके साथ ही मेरे क्रोध का भी नाश कर दिया। जिस क्रोध के कारण मैंने

निरपराधों और आप जैसे सज्जनों को कष्ट में डाला उस मेरे क्रोध को आपने अपनी क्षमा द्वारा जीत लिया। इस दुष्ट क्रोध से मेरा पीछा, आप जैसे सज्जनों ने ही छुड़ाया है और कोई नहीं छुड़ा सकता था। अब तक मुझे जितने मनुष्यों से काम पड़ा था, उन्होंने मेरे क्रोध को उत्तेजना ही दी थी, लेकिन इसका नाश कराने में समर्थ न हो सके थे। आपको, मैं अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ और अपने अपराधों के लिये क्षमा प्रार्थना करता हूँ।

विश्वामित्र की बात सुन, सारी सभा दंग रह गई, कि जो विश्वामित्र अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध थे, नम्रता या क्षमा को जो जानते ही न थे, उनमें आज इतनी नम्रता कहाँ से आ गई। विश्वामित्र को क्रोधरहित बना देने के लिये, सब लोग हरिश्चन्द्र को धन्यवाद देने लगे।

विश्वामित्र की बात के उत्तर में, हरिश्चन्द्र कहने लगे महाराज आप जैसे ऋषि के लिये मुझ तुच्छ की इतनी प्रशंसा करना अशोभनीय कार्य है। जो कुछ भी हुआ है और जो कुछ भी हो रहा है, यह सब आप ही की कृपा का फल है। यदि आपकी कृपा न होती, यदि आप मुझसे राज्य लेकर मुझपर दक्षिणा का बोझ न डालते, यदि आप अपनी दक्षिणा की वसूली में ढील करते और हमें न बिकना पड़ता तो आज आप जो आनन्द देख रहे हैं, यह आनन्द कदापि प्राप्त न होता? आपने, यह सब करके मेरा उपकार ही किया है, अपकार नहीं। आप मेरे उपकारी हैं। आप ही की परीक्षा से मैं जान सका हूँ, कि मैं सत्य का कहाँ तक पालन कर सकता हूँ; अतः आप धन्यवाद के पात्र हैं। आपने मेरा उपकार करने में जो कष्ट सहे हैं, उनके आभार से मैं कदापि उऋण नहीं हो सकता। आप ही की कृपा से आज यह सम्मेलन हुआ है।

राजा की यह उदारतापूर्ण बात सुनकर, सब लोग हरिश्चन्द्र की और भी प्रशंसा करने लगे।

विश्वामित्र बोले– बस राजन्! क्षमा करो। मैं आप ही मर चुका हूँ, अब इस प्रशंसा द्वारा मुझे और न मारो।

हरिश्चन्द्र– महाराज, मैं मिथ्याभाषण तो जानता ही नहीं। मैंने जो कुछ भी प्रार्थना की है, सत्य ही की है?

विश्वामित्र– अब, मेरी प्रार्थना स्वीकार करके आप अयोध्या को चलिए और वहाँ का राज्य सम्हालकर प्रजा को प्रसन्न कीजिए। आपके बिना, अवध की प्रजा नितान्त दुःखी हैं।

हरिश्चन्द्र– महाराज, मैंने तो वह राज्य आपको दान में दे दिया है। दान में दी हुई वस्तु को मैं फिर कदापि नहीं ले सकता। इसके सिवा अब मेरी राज्य करने की इच्छा भी नहीं है।

विश्वामित्र– राजन, मैंने उस समय जो कुछ भी किया था, वह क्रोधवश किया था। क्रोध ने मेरी बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी, इसी से मैंने तुमसे राज्य माँग लिया था। तुम्हीं विचारो, कि यदि ऐसा न होता तो मैं स्वयं तो अपने राज्य को त्याग चुका था, फिर तुम से राज्य क्यों माँगता? उस समय मेरी बुद्धि अस्थिर थी, इससे मैंने राज्य माँग लिया था। नीति के अनुसार बुद्धि की अस्थिरता में किये गये कार्य, प्रामाणिक नहीं माने जाते। अतः तुम्हें अपना राज्य लेने में किंचित भी संकोच न करना चाहिए।

हरिश्चन्द्र– महाराज, आपकी इस युक्ति को थोड़ी देर के लिए मैं मान भी लूँ, तब भी मैं जिस राज्य को दान में दे चुका उसे फिर नहीं ले सकता। क्योंकि क्रोध का आवेश रहा होगा तो आपको रहा होगा और बुद्धि अस्थिर रही होगी तो आपकी रही होगी। मैं न तो क्रोध के आवेश में ही था, न मेरी बुद्धि ही अस्थिर थी। मैंने, बुद्धि की स्थिरता में राज्यदान दिया है, अतः मेरा कार्य तो प्रामाणिक ही माना जायेगा।

विश्वामित्र और हरिश्चन्द्र की उपरोक्त बाते सुन, वह देव कहने लगा, कि राज्य माँगने में विश्वामित्र का किंचित् भी अपराध नहीं है। राज्य माँगने आदि के समय इनकी बुद्धि पर मेरा अधिकार था, अतः आपको सत्य-भ्रष्ट करने के लिए मेरी ही प्रेरणा से इन्होंने राज्य मागा था, और बिकने के लिये विवश किया था।

हरिश्चन्द्र– मैं आपकी बात भी मानता हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि पर किसी दूसरे का आधिपत्य नहीं था? मैंने तो जो कुछ भी किया है, वह स्व-बुद्धि से ही किया है? ऐसी अवस्था में मैं दिये हुए दान को फिर वापस कैसे ले सकता हूँ?

विश्वामित्र और उस देव को जब हरिश्चन्द्र ने निरुत्तर कर दिया, तब इन्द्रादि प्रमुख देव हरिश्चन्द्र से कहने लगे–राजन्! यद्यपि तुम्हें राज्य करने की आकांक्षा नहीं है, तथापि जिस कार्य से जनता का हित हो, उस कार्य को करना तो स्वीकार करोंगे न?

हरिश्चन्द्र– हाँ, यदि मेरे किसी कार्य से दूसरों का हित होता हो, तो मैं उसे प्राणपण से करने को तैयार हूँ।

इन्द्र–आप, विश्वामित्र की प्रार्थना स्वीकार करके अयोध्या को तो चलिए। वहाँ की प्रजा, यदि विश्वामित्र के शासन से सुखी हो तब तो कोई बात नहीं है, किन्तु यदि वह विश्वामित्र के शासन से दुःखी हो और आपके शासन से उसे सुख मिलने की आशा हो, तब तो आपको शासन करना ही पड़ेगा। क्योंकि आप अभी ईस बात को स्वीकार कर चुके हैं, कि यदि मेरे किसी कार्य से दूसरों का हित होता है तो मैं उसे प्राणपण से करने को तैयार हूँ। राज्य करते हुए राज्य-सुख भोगना, एक बात है और प्रजा के हित को दृष्टि में रखकर, उसपर शासन करना तथा दुष्टों से प्रजा की रक्षा करना, दूसरी बात है। अतः आप राज्य चाहे न कीजिए, परन्तु प्रजा की इच्छा होने के कारण उसकी रक्षा का भार तो आपको ग्रहण करना ही पड़ेगा।

इन्द्र की बात के उत्तर में हरिश्चन्द्र ने कहा, कि मुझसे यह भी नहीं हो सकता। एक तो जिस राज्य को मैं दान कर चुका उस राज्य में जाने या रहने का मुझे अधिकार ही नहीं है। दूसरे महाराजा विश्वामित्र की मेरे लिए यहीं आज्ञा है, कि मैं अयोध्या में न ठहरूँ। इन कारणों से मैं आपकी इस आज्ञा का पालन करने में असमर्थ हूँ।

इन्द्र बोले—राजन्! आप केवल अयोध्या के राज्य के स्वामी थे, इसलिए दान किये हुए अयोध्या के राज्य में नहीं जाना चाहते हो। लेकिन यदि समस्त भूमण्डल के स्वामी होते और उस समय अपना राज्य दान कर देते, तो फिर इस प्रण का पालन कैसे करते? क्या तब आत्म-हत्या कर डालते? दूसरे राज्य में रहने की आज्ञा देने का अधिकार जिन विश्वामित्र को था, क्या उन्हें अपनी आज्ञा लौटा लेने का अधिकार नहीं है? इस समय आपसे वे ही तो अयोध्या चलने के लिये प्रार्थना कर रहे हैं न? फिर उनकी एक आज्ञा तो मानी जावे और दूसरी क्यों न मानी जावे? इन बातों से आप अयोध्या चलने से नहीं छूट सकते, इस लिए आप अयोध्या चलिए। आप को अयोध्या का राज्य करना ही होगा, यह बात यहाँ कोई नहीं कह रहा है। इसका निर्णय तो परिस्थिति देखकर कीजिए।

इन्द्र के इस कथन का सबों ने समर्थन किया। सबलोग हरिश्चन्द्र से अयोध्या जाने के लिए अत्यधिक आग्रह करने लगे। सबके आग्रह को देखकर, हरिश्चन्द्र विचार में पड़ गये, कि अब मुझे क्या करना चाहिए। इतने लोगों और विशेषतः इन्द्र का आग्रह न मानना, हठ कहलावेगी। अन्त में विवश होकर उन्होंने कहा कि रानी और मैं दोनों ही क्रीत-दास हैं। हमारे स्वामियों ने हमें पाँच-पाँच सौ स्वर्णमुद्रा में खरीदा है। जब तक हमारे लिए दी हुई स्वर्णमुद्राएँ इन्हें वापस न मिल जावे तब तक हमें चलने की बात करने का भी अधिकार नहीं है, यहाँ से अयोध्या चलना तो दूसरी बात हैं।

ब्राह्मण और भंगी कहने लगे, कि हम आपका मूल्य वैसे ही पा चुके। अब आप लोग हमारे दास नहीं है। हम, आप लोगों से कोई काम न लेंगे।

भंगी और ब्राह्मण के नाही, करते रहने पर भी देवताओं ने उन्हें व्यय किये हुए द्रव्य से कई गुना अधिक द्रव्य दिया।

इस प्रकार, देवताओं ने, दम्पति को दासत्व से मुक्त किया। इन्द्र की आज्ञा से, देवताओं ने तत्क्षण एक सुन्दर-विमान तैयार किया। इन्द्र विश्वामित्र आदि की प्रार्थना पर महाराजा हरिश्चन्द्र, महारानी तारा, और कुमार रोहित, ब्राह्मण और भंगी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके और उनकी स्वीकृति लेकर, तथा वहाँ के सब लोगों से विदा माँगकर विमान में विराजे। विश्वामित्र तथा इन्द्रादि देवता भी विमान में सवार हुए और विमान को अयोध्या की ओर चलाया।

पुनरागमन :–

विश्वामित्र ने अयोध्या की प्रजा को, सभा में आमन्त्रित कर जैसे ही यह शुभ समाचार सुनाया, कि हरिश्चन्द्र को मैं पुनः लाकर अयोध्या के राज्यासन पर आसीन करूँगा, वैसे ही यह समाचार बिजली की तरह सारे नगर में फैल गया। समस्त प्रजा प्रसन्न हो उठी और विश्वामित्र की दुर्बुद्धि मिट, सुबुद्धि आ जाने के कारण, ईश्वर को धन्यवाद देने लगी।

आज सारे नगर में यहीं चर्चा है। हरिश्चन्द्र का आना सुनकर, लोग प्रसन्नता से फूले नहीं समाते। सारा नगर सजाया गया है। हरिश्चन्द्र के आने का शुभ-समाचार मिलने की अभिलाषा से स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ बैठे हैं। स्त्रियाँ, हरिश्चन्द्र और तारा का जय-घोष करने के साथ ही, उनका और उनके सत्य का गुणगान कर रहे हैं, तथा हरिश्चन्द्र की सत्य-पालन में विजय होने के कारण, प्रसन्नता प्रदर्शित कर रहे हैं। हरिश्चन्द्र के लौटकर अयोध्या आने की अभिलाषा से सारा नगर मूर्त्तिमान आनन्द बना हुआ है। बहुत से लोग ऊँचे-ऊँचे स्थानों पर चढ़कर, काशी के मार्ग की ओर टकटकी लगाकर देख रहे हैं। सहसा, काशी की ओर से विमान आता हुआ उनकी दृष्टि में पड़ा।

क्रमशः

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1. Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:

Vol - 1	(satakas 1-2)	Price : Rs.	150.00
Vol - 2	(satakas 3-6)		150.00
Vol - 3	(satakas 7-8)		150.00
Vol - 4	(satakas 9-11)		150.00

2. James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates — Price : Rs. 100.00
   (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)
3. P. C. Samsukha - Essence of Jainism translated by Ganesh Lalwani. — Price : Rs. 15.00
4. Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, Price : Rs. 15.00
5. Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani — Price : Rs. 15.00
6. Ganesh Lalwani - Jainthology — Price : Rs. 100.00
7. Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains — Price : Rs. 100.00
8. Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India — Price : Rs. 100.00
9. Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism — Price : Rs.
10. Smt. Lata Bothra- The Harmony Within — Price : Rs. 100.00
11. Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira — Price : Rs. 100.00
12. Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity — Price : Rs. 100.00

Hindi :

1. Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) Translated by Shrimati Rajkumari Begani — Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani — Price : Rs. 20.00
3. Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani — Price : Rs. 30.00
4. Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani — Price : Rs. 50.00
5. Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira — Price : Rs. 60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

मोह रहित मनुष्य दुःख मुक्त है।

B C JAIN JEWELLERS
Since 1926

B.C. JAIN JEWELLERS PVT. LTD.

22, Camac Street
3rd floor, Block-A
Kolkata - 700 017
Phone : 2283-6203/6204/0056
Fax : 2283-6643
Resi : 2358-6901,2359-5054

TITTHAYARA
Vol XXXV No.04
25th July 2011

Registered
No KOL RMS / 070/2010-12
R.N.I 30181/77

सभी प्राणियों के लिये मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ होता है,
क्योंकि बुरे कर्मों का फल निश्चय ही मिलता है
अतः मनुष्य को क्षण भर भी प्रमाद न कर
शुभ कार्यों में तत्पर रहना चाहिये।

Kamal Singh Rampuria
Rampuria Mansions
17/3, Mukhram Kanoria Road, Howrah
Phone No. : 2666-7212/7225